शिव महिम्न स्तोत्र

भाषा-टीका सहितम्

सम्पादक :—

आचार्य पं० राजेश दीक्षित

प्रकाशक :—

कमल पुस्तकालय

१६७७ नई सड़क, दिल्ली-६

१९८५ ई०

मूल्य २)५०

शिवमहिम्न स्तोत्रम्

★

महिम्नः पारन्ते परमविदुषो यद्यसदृशी ।
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ॥
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिमाणावधि गृणन् ।
ममाप्येष स्तोत्रे हर ! निरपवादः परिकरः ॥१॥

हे हर ! (सभी दुःखों के हरने वाले) आपकी महिमा के अन्त को न जानने वाले मुझ अज्ञानी द्वारा की गई स्तुति यदि आपकी महिमा के अनुकूल न हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि ब्रह्मा आदि भी आपकी महिमा के अन्त को नहीं जानते हैं। अतः उनकी स्तुति भी आपके योग्य नहीं है। "स वाग् यथा तस्य गुणान् गृणीते" के अनुसार मेरी यथामति स्तुति उचित ही है। "नमः पतन्त्यात्मसमं पतत्रिणः" इस न्याय से मेरी स्तुति आरम्भ करना क्षम्य हो ॥ १ ॥

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो–
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।

स कस्य स्तोतव्यः कतिविधिगुणः कस्य विषयः ।
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥२॥

हे हर ! आपकी निर्गुण और सगुण महिमा मन तथा वाणी के विषय से परे है, जिसे वेद भी संकुचित होकर कहते हैं । अतः आपकी उस महिमा की स्तुति करने में कौन समथ हो सकता है ? फिर भी भक्तों के अनुग्रहार्थ धारण किया हुआ आपका नवीन रूप भक्तों के मन और वाणी का विषय हो सकता है ॥ २ ॥

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तवब्रह्मन्किवागपि सुरगुरोर्विस्मय पदम् ॥
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः ।
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथनबुद्धिर्व्यवसिता ॥३॥

हे ब्रह्मन् ! जब कि आपने मधु के सदृश मधुर और अमृत के सदृश जीवनदायिनी वेदरूपी वाणी को प्रकाशित किया है, तब ब्रह्मादि द्वारा की गई स्तुति आपको कैसे प्रसन्न कर सकती है ? हे त्रिपुरमथन ! जब ब्रह्मादि भी आपके स्तुति-गान करने में असमर्थ हैं, तब मुझ तुच्छ की क्या सामर्थ्य है ? मैं तो केवल आपके गुण-गान से ही अपनी वाणी को पवित्र करने की इच्छा रखता हूँ ॥३॥

तवैश्वर्यं तत्तज्जगदुदयरक्षा प्रलयकृत् ।
त्रयीवस्तुव्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासुतनुषु ॥

अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीम् ।
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥४॥

हे वरद ! आपके ऐसे ऐश्वर्य की—जो संसार की सृष्टि, रक्षा तथा प्रलय करने वाला है, तीनों वेदों द्वारा गाया गया है, तीनों गुणों (सत्, रज, तम) से परे है, एवं तीनों शक्तियों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) में व्याप्त है, कुछ नास्तिक लोग अनुचित निन्दा करते हैं। इससे उन्हीं का अधःपतन होता है, न कि आपके सुयश का ॥ ४ ॥

किमीहः किङ्कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनम् ।
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ॥
अतर्क्यैश्वर्येत्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः ।
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥५॥

"अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्" के अनुसार कल्पना से बाहर, अपनी अलौकिक माया से सृष्टि करने वाले आपके ऐश्वर्य के विषय में नास्तिकों का यह कुतर्क कि वह ब्रह्मा सृष्टि कर्ता है, किन्तु उसकी इच्छा, शरीर, सहकारी कारण, आधार और समवायी कारण क्या है ? जगत् के कतिपय मन्द-मति वालों को भ्रान्ति करने वाला है ॥ ५ ॥

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ॥
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरो
यतोमन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥६॥

हे अमर वर ! यह सावयव लोक अवश्य ही जन्य है तथा इसका कर्ता भी कोई न कोई है, परन्तु वह कर्ता आपके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं हो सकता, क्योंकि इस विचित्र संसार की विचित्र रचना की सामग्री दूसरे के पास होना असम्भव है। इसलिये अज्ञानी लोग ही आपके विषय में सन्देह करते हैं ॥६॥

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति ।
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ॥
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां ।
नृमाणेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥७॥

हे अमर वर ! वेदत्रयी, सांख्य, योग, शैव मत और वैष्णवमत ऐसे भिन्न-भिन्न मतों में कोई वैष्णवमत और कोई शैव मत को अच्छा कहते हैं, परन्तु रुचि की विचित्रता से टेढ़े-सीधे मार्ग में प्रवृत्त हुए मनुष्यों को अन्त में एक आप ही साक्षात् या परम्परया प्राप्त होते हैं, जैसे कि नदियाँ टेढ़ी-सीधी बहती हुई साक्षात् या परम्परा से समुद्र में ही जा मिलती हैं ॥ ७ ॥

महोक्षः खट्वांगम्परशुरजिनं भस्म फणिनः।
कपालंचेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् ॥
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रू प्रणिहिताम्।
न हि स्वात्मारामं विषय मृगतृष्णा भ्रमयति ।८।

हे वरद ! महोक्ष (बैल), खाट का पाया, परशु, गजचर्म, भस्म, सर्प, कपाल इत्यादि आपकी धारण सामग्रियाँ हैं, परन्तु उन ऋद्धियों को जो आपकी कृपा से प्राप्त देवता लोग भोगते हैं, आप क्यों नहीं भोगते ! स्वात्माराम (आत्मज्ञानी) को विषय (रूपरसादि) रूपी मृगतृष्णा नहीं भ्रमा सकती है ॥ ८ ॥

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वद्ध्रुवमिदम्।
परोध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ॥
समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन तैर्विस्मित इव।
स्तुवञ्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ।९।

हे पुरमथन ! सांख्य मतानुयायी "नह्यसत उत्पत्तिः सम्भवति" के अनुसार जगत् को ध्रुव (नित्य), बुद्धिमतानुयायी अध्रुव (क्षणिक) तार्किकजन नित्य (आकाश आदि पञ्च और पृथिव्यादि परमाणु और अनित्य कार्यद्रव्य) दोनों मानते हैं। इन मतान्तरों से विस्मित मैं भी आपकी स्तुति करता हुआ लज्जित नहीं होता, क्योंकि वाचालता लज्जा को स्थान नहीं देती ॥ ९ ॥

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरिविरंचिर्हरिरधः ।
परिच्छेत्तुं यातावनलमनिलस्कन्धवपुषः ॥
ततोभक्ति श्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत् ।
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ।१०।

हे गिरीश (गिरि में शयन करने वाले), तेजपुंज आपकी विभूति को ढूँढ़ने के लिए ब्रह्मा आकाश तक और विष्णु पाताल तक जाकर भी उसे पाने में असमर्थ रहे, तत्पश्चात् उनकी कायिक, मानसिक और वाचिक सेवा से प्रसन्न होकर आप स्वयं प्रकट हुए, इससे यह निश्चित् है कि आपकी सेवा से ही सब सुलभ है ॥ १० ॥

अयत्नादापाद्यत्रिभुवनमवैरव्यतिकरम् ।
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ॥
शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः ।
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ।११।

हे त्रिपुरहर ! मस्तकरूपी कमल की माला को जिस रावण ने आपके कमलवत् चरणों में अर्पणकर के त्रिभुवन को निष्कण्टक बनाया था तथा युद्ध के लिए सर्वदा उत्सुक रहने वाली भुजाओं को पाया था, वह आपकी अविरल भक्ति का ही परिणाम था ॥ ११ ॥

अमुष्य त्वत्सेवा समधिगतसारं भुजवनम् ।
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौविक्रमयतः ।।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलितांगुष्ठशिरसि ।
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितोमुह्यति खलः ।१२।

रावण द्वारा उन्हीं भुजाओं से जिन्होंने आपकी सेवा से बल प्राप्त किया था, आपके घर कैलास को उखाड़ने के लिए हठात् प्रयोग करते ही आपके अँगूठे के अग्र भाग के संकेत मात्र पाताल में गिरा, निश्चय ही खल उपकार भूल जाते हैं ।। १२ ।।

यद्द्धि सुत्राम्णो वरद ! परमोच्चैरपि सती- ।
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयस्त्रिभुवनः ।।
नतच्चित्रं तस्मिन्वरिवसितरित्वच्चरणयोः ।
न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ।१३।

हे वरद ! वाणासुर ने आपकों नमस्कार मात्र से इन्द्र की सम्पत्ति को नीचा दिखलाने वाली सम्पत्ति प्राप्त किया था और त्रिभुवनको अपना परिजन बना लिया था । यह आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि आपके चरणों में नमस्कार करना किस उन्नति का कारण नहीं होता है ।। १३ ।।

अकाण्ड : ब्रह्माण्ड क्षयचकितदेवासुरकृपा ।
विधेयस्याऽऽसीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः ।।

स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपिश्लाघ्यो भुवनभयभगंव्यसनिनः ।१४।

हे त्रिनयन ! सिन्धु विमंथन से उत्पन्न कालकूट से असमय में ब्रह्माण्ड के नाश से डरे हुए सुर व असुरों पर कृपा करके एवं संसार को बचाने की इच्छा से उसको (काल कूट को) पान करने से आपके कण्ठ की कालिमा भी शोभा देती है। ठीक ही है, जगत् के उपकार की कामना वाले दूषण भूषण समझे जाते हैं ॥ १४ ॥

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे ।
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः ॥
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत् ।
स्मरःस्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः।१५।

जो विजयी कामदेव अपने बाणों द्वारा जगत् के देव, मनुष्य और राक्षसों को जीतने में सर्वथा समर्थ रहा, उसी कामदेव अन्य देवों के समान आपको भी समझा, जिससे वह स्मरण मात्र के लिये ही रह गया (दग्ध हो गया), जितेन्द्रियों का अनादर करना अहितकारक ही होता है ॥ १५ ॥

मही पादाघाताद्व्रजति सहसा संशयपदम् ।
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ॥

मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा ।
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥ १६ ॥

हे ईश ! आप जगत् की रक्षा के लिए राक्षसों को मोहित करके नाश के लिए नृत्य करते हो, तब भी संसार का आपके ताण्डव से दुःख दूर होता है, क्योंकि आपके चरणों के आघात से पृथ्वी धँसने लगती है, विशाल बाहुओं के संघर्ष से नक्षत्र आकाश पीड़ित हो जाता है तथा आपकी चंचल जटाओं से ताड़ित हुआ स्वर्ग लोक भी कम्पायमान हो जाता है। ठीक ही है, उपकार भी किसी के लिए अहितकारक हो जाता है ॥ १६ ॥

वियद्व्यापीतारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः ।
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ॥
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिमदिव्यं तव वपुः ॥ १७ ॥

हे ईश ! तारा गणों की कान्ति से अत्यन्त शोभायमान आकाश में व्याप्त तथा भूलोक को चारों ओर से घेरकर जम्बू द्वीप बनाने वाली गङ्गा का जल-प्रवाह आपके जटाकपाट में बूँद से भी लघु देखा जाता है। इतने से ही आपके दिव्य तथा श्रेष्ठ शरीर की कल्पना की जा सकती है ॥ १७ ॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिनगेन्द्रो धनुरथा-
रथांगेचन्द्राकौं रथचरणपाणिः शर इति ॥
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ।१८।

हे ईश ! तृण के समान त्रिपुर को जलाने के लिए पृथ्वी को रथ, ब्रह्मा को सारथी, हिमालय को धनुष, सूर्य-चन्द्र को रथ का चक्र तथा विष्णु को विषधर बाण बनाना आपका आडम्बर मात्र है। विचित्र वस्तुओं से क्रीडा करते हुए समर्थों की बुद्धि स्वतन्त्र होती है ॥ १८ ॥

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥१९॥

हे त्रिपुरहर ! विष्णु आपके चरणों में प्रति दिन सहस्र कमलों का उपहार देते थे। एक दिन एक की कमी होने के कारण उन्होंने अपने एक कमलवत् नेत्र को निकाल कर पूरा किया। यह भक्ति की चरम सीमा चक्र के रूप में आज भी संसार की रक्षा किया करती है ॥ १९ ॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमताम् ।
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलतिपुरुषाराधनमृते ॥

अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवम् ।
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥२०॥

हे त्रिपुरहर ! आप ही को यज्ञ के फल का दाता समझ कर, वेद में दृढ़ विश्वास कर मनुष्य कर्मों का आरम्भ करते हैं। क्रिया रूप यज्ञ के समाप्त होने पर आपही फल देने वाले रहते हैं। आपकी आराधना के बिना नष्ट कर्म फलदायक नहीं होता ॥ २० ॥

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रेषस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥२१॥

हे शरणद ! कर्मकुशल यज्ञपति दक्ष के यज्ञ के ऋषिगण ऋत्विज, देवता सदस्य थे । फिर भी यज्ञ के फल देने वाले आप की अप्रसन्नता से वह ध्वंस हो गया । निश्चय है कि आप में श्रद्धा-रहित किया गया यज्ञ नाश के लिए ही होता है ।। २१ ॥

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरम् ।
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ॥
धनुःपाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुम् ।
त्रसन्तन्तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥२२॥

हे नाथ ! काल से प्रेरित मृगरूप धारण किये ब्रह्मा को भय से मृगीरूपी धारण करने वाली अपनी कन्या में आसक्त देख, आपका उनके पीछे छोड़ा गया बाण आर्द्रा आज भी नक्षत्र रूप में मृगशिरा (ब्रह्मा) के पीछे वर्तमान है ।। २२ ।।

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्वाय तृणवत् ।
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वापुरमथन पुष्पायुधमपि ।।
यदिस्त्रैणं देवो यमनिरतदेहार्ध-घटनाद् ।
अवैति त्वामद्धावत वरद मुग्धा युवतयः ।।२३।।

हे यम-नियम वाले त्रिपुरहर ! आपकी कृपा से आपका अर्धस्थान प्राप्त करने वाली, अपने सौन्दर्य रूपी धनुष को धारण करने वाले कामदेव को जला हुआ देखकर भी यदि पार्वती आपको अपने अधीन समझें तो ठीक ही है, क्योंकि प्रायः युवतियाँ ज्ञान-हीन होती हैं ।। २३ ।।

स्मशानेष्वाक्रीडारमरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।।
अमंगल्यं शीलं तव भवतु ना मैवमखिलम्
तथापि स्मर्तृणां वरद परमं मंगलमसि ।। २४ ।।

हे स्मरहर ! आपका स्मशान में क्रीडा करना, भुत-प्रेत पिशाचादि को साथ रखना, शरीर में चिता-भस्म का लेपन करना तथा

नर मुण्डों की माला पहिनना आदि वीभत्स कर्मों से यद्यपि आपका चरित अमंगल मय लगता है, तथापि स्मरण करने वालों को हे वरद ! आप परम मंगलरूप हैं ॥ २४ ॥

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः ।
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्संगितदृशः ॥
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्ज्यामृतमये ।
यधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ।२५।

हे वरद ! जिस प्रकार अमृतमय सरोवर में अवगाहन से (स्नान करने से) प्राणिमात्र तापत्रय से मुक्त हो जाते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियों से पृथक् करके मन को स्थिर कर, विधि पूर्वक प्राणायाम से, पुलकित तथा आनन्दाश्रु से युक्त योगीजन ज्ञानदृष्टि से जिसे देखकर परमानन्द का अनुभव करते हैं, वह आपही हैं ॥ २५ ॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वंहुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योमत्वमुधरणिरात्मा त्वमिति च ॥
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतिगिरम् ।
न विद्मस्तत्तत्त्वंवयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥२६॥

हे वरद, आपके विषय में ज्ञानीजनों की यह धारणा है "क्षिति हुत वह क्षेत्रज्ञाम्भः प्रभंजन चन्द्रमस्तपनवियदित्यष्टो मूर्तिर्नमोभव-

बिभ्रते ।" इस श्रुति के अनुसार सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल. आकाश, पृथ्वी और आत्मा भी आपही हैं, किन्तु मेरे विचार से ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ आप न हों ॥ २६ ॥

त्रयीं तिस्रो वृत्तिस्त्रिभुवनमथोत्रीनपिसुरा ।
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृतिः ॥
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः ।
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ।२७।

हे शरणद ! व्यस्त [अ, उ, म,] 'ॐ' पद, शक्ति द्वारा तीन वेद [ऋग्, यजुः और साम], तीन वृत्ति [जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति], त्रिभुवन [भूर्भुवः स्वः] तथा तीनों देव [ब्रह्मा, विष्णु, महेश], इन प्रपञ्चों से व्यस्त आपका बोधक है और समस्त 'ॐ' पद, समुदाय शक्ति से सर्व विकार रहित अवस्थात्रयसे विलक्षण अखण्ड, चैतन्य आपको सूक्ष्म ध्वनि से व्यस्त करता है ॥ २७ ॥

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह महां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ॥
अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देवः श्रुतिरपि ।
प्रियायास्मैधाम्नेप्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते ॥२८॥

हे देव ! भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महादेव, भीम और ईशान-यह जो आपके नाम का अष्टक है, इस प्रत्येक नाम में वेद और

देवतागण [ब्रह्मा] आदि विहार करते हैं, इसलिये ऐसे प्रियधाम [आश्रय भूत] आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ।। २८ ।।

नमोनेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो ।
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ।।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो ।
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः ।।२६।।

हे प्रियदव ! [निर्जन वन-विहरण शील], नेदिष्ठ [अत्यन्त समीप] दविष्ठ [अत्यन्त दूर[, क्षोदिष्ठ [अति सूक्ष्म], महिष्ठ [महान्], वर्षिष्ठ [अत्यन्त वृद्ध], यविष्ठ [अतियुवा], सव-स्वरूप और अनिर्वचनीय आपको नमस्कार है ।। २६ ।।

बहुलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः ।
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौमृडाय नमो नमः ।
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ।।३०।।

हे शिवजी ! जगत् की उत्पत्ति के लिये परम रजोगुण धारण किये भव [ब्रह्मा] रूप आपको बार-बार नमस्कार है और उस जगत् के सहार करने में तमोगुण को धारण करने वाले हर [रुद्र], आपके लिए पुनः-पुनः नमस्कार है, जगत् के सुख के लिए सत्त्व गुण का

धारण करने वाले मृड (विष्णु), आपको बार-वार नमस्कार है। तीनों गुणों (सत्व, रज, तम) से परे जो अनिर्वचनीय पद से विशिष्ट हैं, ऐसे आपको बार-वार नमस्कार है ॥ ३० ॥

कृशपरिणतिचेतः क्लेशवश्यं क्व चेदम् ।
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनीशश्वदृद्धिः ॥
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधा-
द्वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३१॥

हे वरद ! कहाँ तो रागद्वेष आदि से कलुषित तथा तुच्छ मेरा मन, कहाँ आपकी अपरमित विभूति, तिसपर भी आपकी भक्ति ने मुझे निर्भय बनाकर इस वाक्रूपी पुष्पाञ्जलि को आपके चरण-कमलों में समर्पण करने के लिये वाध्य किया है ॥ ३१ ॥

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे ।
सुरतरुवरशाखा लेखनीपत्रमुर्वी ॥
लिखित यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम् ।
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥३२॥

हे ईश ! असित अर्थात् काले पर्वत के समान कज्जल (स्याही) समुद्र के पात्र में हो, सुरवर (कल्पवृक्ष) के शाखा की उत्तम लेखनी हो और पृथ्वी कागज हो, इन साधनों को लेकर स्वयं शारदा यदि सर्वदा ही लिखती रहें तथापि वे आपके गुणों का पार नहीं पा सकतीं, तो मैं कौन हूँ ॥ ३२ ॥

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
ग्रंथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥

असुर, सुर और मुनियों से पूजित तथा विख्यात महिमा वाले ऐसे ईश्वर चन्द्रमौलि के इस स्तोत्र को अलघुवृत्त अर्थात् बड़े [शिखरिणी] वृत्त में सकल गुण श्रेष्ठ पुष्पदंत नामक गन्धर्व ने बनाया ॥ ३३ ॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्-
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान्य : ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान्कीर्तिमांश्च ॥३४

शुद्धचित्त होकर अनवद्य महादेवजी के इस स्तोत्र को जो पुरुष प्रतिदिन परम भक्ति से पढ़ता है, वह इस लोक में धन-धान्य, आयु से युक्त, पुत्रवान् और कीर्तिमान होता है और अन्त में शिव-लोक में जाकर शिवस्वरूप हो जाता है ॥ ३४ ॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ।३५।

महादेवजी से श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है, महिम्न से श्रेष्ठ कोई स्तोत्र नहीं है, अघोर मंत्र से श्रेष्ठ कोई मन्त्र नहीं है और गुरु से श्रेष्ठ कोई तत्त्व (पदार्थ) नहीं है ॥ ३५ ॥

दीक्षादानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नस्तव पाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३६॥

दीक्षा, दान, तप, तीर्थादि तथा ज्ञान और यागादि क्रियाएँ इस शिवमहिम्नस्तोत्र के पाठ की सोलहवीं कला को भी नहीं प्राप्त कर सकती हैं ॥ ३६ ॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शशिधरवरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्-
स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३७॥

सभी गंधर्वों के राजा पुष्पदंत भाल में चन्द्रमा को धारण करने वाले देवाधि देव महादेवजी के दास थे. वे सुरगुरु महादेवजी के क्रोध से अपनी महिमा से भ्रष्ट हुए, तब उन्होंने शिवजी की प्रसन्नता के लिए इस परम दिव्य शिवमहिम्न स्तोत्र को बनाया ॥ ३७ ॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुम्
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेतः ।

व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥३८॥

यह पुष्पदंत का बनाया हुआ अमोघ स्तोत्र श्रेष्ठ देवताओं तथा मुनियों से पूज्य और स्वर्ग तथा मोक्ष का कारण है। इसे जो मनुष्य अनन्य चित्त से हाथ जोड़कर पढ़ता है, वह किन्नरों द्वारा स्तुत्य होकर शिवजी के समीप जाता है ॥ ३८ ॥

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्विषहरेण हरप्रियेण ।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥३९॥

श्रीपुष्पदंत के मुख से निकले हुए इस पापहारी तथा महादेवजी के प्रिय स्तोत्र को सावधानी से कण्ठस्थ करके पाठ करने से प्राणी मात्र के स्वामी श्रीमहादेवजी प्रसन्न होते हैं ॥ ३९ ॥

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥४०॥

अनुपम और मन को हरने वाला यह ईश्वर वर्णनात्मक, एवं पुष्पदंत गंधर्व का कहा हुआ स्तोत्र अब समाप्त हूआ ॥ ४० ॥

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वरः ।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः ॥४१॥

हे महेश्वर ! मैं नहीं जानता कि आप कैसे हैं ? आप चाहे जैसे हों, आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥ ४१ ॥

एकाकालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥४२॥

हे प्रभु ! प्रातःकाल या दोपहर या सायंकाल में या तीनों काल में जो आपकी महिमा का गान करेगा, वह सब पापों से छूटकर आपके लोक में सुख पूर्वक निवास करेगा ॥ ४२ ॥

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः ।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥४३॥

इस प्रकार इस वाङ्मयी पूजा को मैं श्रीशङ्करजी के चरणों में अर्पण करता हूँ, जिससे श्रीमहादेवजी मुझपर प्रसन्न रहें ॥ ४३ ॥

॥ इति भाषाटीकोपेतं श्रीशिवमहिम्नस्तोत्रं समाप्तम् ॥

अथ रावण कृत—

शिवताण्डव-स्तोत्रम्

जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले
गलेऽवलम्ब्य लम्बितां भुजंगतुंगमालिकाम् ।
डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवड्डमर्वयं
चकार चण्डताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम् ।१।

जिन्होंने जटारूप अटवी (वन) से निकलती हुई गंगाजी के गिरते हुए प्रवाहों से पवित्र किये गये गले में सर्पों की लटकती हुई विशाल माला को धारणकर, डमरूके डम-डम शब्दोंसे मण्डित प्रचण्ड ताण्डव (नृत्य) किया, वे शिवाजी हमारे कल्याणका विस्तार करें ।१।

जटाकटाहसम्भ्रमभ्रमन्निलिम्पनिर्झरी-
विलोलवीचिवल्लरीविराजमानमूर्द्धनि ।
धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाटपट्टपावके
किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम ।२।

जिनका मस्तक जटारूपी कड़ाह में वेगसे घूमतीहुई गंगाकी चंचल तरंग,लताओंसे सुशोभित हो रहा है, ललाटाग्नि धक्-धक् जल रहीहै

सिर-पर बाल चन्द्रमा विराजमान हैं, उन (भगवन् शिव) में मेरा निरन्तर अनुराग हो ॥ २ ॥

धराधरेन्द्रनन्दिनीविलासबन्धुबन्धुर-
स्फुरद्दिगन्तसन्ततिप्रमोदमानमानसे ।
कृपाकटाक्षधोरणीनिरुद्धदुर्धरापदि
कचिद्दिगम्बरे मनो विनोद मेतु वस्तुनि ।३।

गिरिराजकिशोरी पार्वती के विलासकालोपयोगी शिरोभूषण से समस्त दिशाओं को प्रकाशित होते देख जिनका मन आनन्दित हो रहा है, जिनकी निरन्तर कृपादृष्टिसे कठिन आपत्ति का भी निवारण हो जाता है: ऐसे किसी दिगम्बर तत्वमें मेरा मन विनोद करे ॥ ३ ॥

जटाभुजंगपिंगलस्फुरत्फणामणिप्रभा-
कदम्बकुंकुमद्रवप्रलिप्तदिग्वधूमुखे ।
मदान्धसिन्धुरस्फुरत्त्वगुत्तरीयमेदुरे
मनो विनोदमद्भुतं बिभर्तु भूतभर्तरि ।४।

जिनके जटाजूटवर्ती भुजंगमों के फणों की मणियों का फैलता हुआ पिंगल प्रभापुन्ज दिशारूपिणी अंगनाओंके मुखपर कुंकुमरागका अनुलेप कर रहा है, मतवाले हाथी के हिलते हुए चमड़े का उत्तरीय वस्त्र (चादर) धारण करने से स्निग्धवर्ण हुए उन भूतनाथमें मेरा चित्त अद्भुत विनोद करे ॥ ४ ॥

सहस्रलोचनप्रभृत्यशेषलेखशेखर-
प्रसूनधूलिधोरणीविधूसराङ्घ्रिपीठभूः ।

भुजंगराजमालया निबद्धजाट जूटकः
श्रियैचिराय जायतां चकोरबन्धुशेखरः ।५।

जिनकी चरणपादुकाएँ इन्द्र आदि समस्त देवताओंके (प्रणाम करते समय) मस्तकवर्ती कुसुमों की धूलिसे धूसरित हो रही हैं, नागराज (शेष) के हार से बँधी हुई जटावाले वे भगवान चन्द्रशेखर मेरे लिए चिरस्थायिनी सम्पत्ति के साधक हों ॥ ५ ॥

ललाटचत्वरज्वलद्धनंजयस्फुलिंगभा-
निपीतपंचसायकं नमन्निलिम्पनायकम् ।
सुधामयूखलेखया विराजमानशेखरं
महाकपालि सम्पदे शिरो जटालमस्तु नः ।६।

जिसने ललाट-वेदीपर प्रज्वलित हुई अग्नि के स्फुलिंगों के तेज से कामदेव को नष्ट कर डाला था, वह (श्रीमहादेवजीका) उन्नत विशाल ललाटवाला जटिल मस्तक हमारी सम्पत्ति का साधक हो ॥ ६ ॥

करालभालपट्टिकाधगद्धगद्धगज्ज्वल-
द्धनंजयाहुतीकृतप्रचण्डपंचसायके ।
धराधरेन्द्रनन्दिनीकुचाग्रचित्रपत्रक-
प्रकल्पनैकशिल्पिनि त्रिलोचने रतिर्मम ।७।

जिन्होंने अपने विकराल भालपट्ट पर धक्-धक् जलती हुई अग्नि में प्रचण्ड कामदेव को हवन कर दिया था, गिरिराज-

किशोरीके स्तनों पर पत्रभंग-रचना करने के एकमात्र कारीगर उन भगवान् त्रिलोचन में मेरी धारणा लगी रहे ॥ ७ ॥

नवीनमेघमण्डली निरुद्धदुर्धरस्फुर-
त्कुहूनिशीथिनीतमःप्रबन्धबद्धकन्धरः ।
निलिम्पनिर्झरीधरस्तनोतु कृत्तिसिन्धुरः
कलानिधानबन्धुरःश्रियंजगद्धुरन्धरः ।८।

जिनके कण्ठमें नवीन मेघमालासे घिरीहुई अमावस्याकी आधी रातके समय फैलते हुए दुरूह अन्धकारके समान श्यामता अंकित है; जो गजचर्म लपेटे हुए हैं, वे संसारभार को धारण करने वाले चन्द्रमा (केसम्पर्क) से मनोहर कान्तिवाले भगवान् गंगाधर मेरी सम्पत्ति का विस्तार करें ॥ ८ ॥

प्रफुल्लनीलपंकजप्रपंचकालिमप्रभा-
वलम्बिकण्ठकन्दलीरुचिप्रबद्धकन्धरम् ।
स्मरच्छिदं पुरच्छिदं भवच्छिदं मखच्छिदं
गजच्छिदान्धकच्छिदं तमन्तकच्छिदं भजे ।९।

जिनका कण्ठदेश खिले हुए नीलकमल समूह की श्यामप्रभा का अनुकरण करने वाली हरिणीकी-सी छवि वाले चिन्ह से सुशोभित है तथा जो कामदेव, त्रिपुर, भव (संसार), दक्ष-यज्ञ, हाथी, अन्धकासुर और यमराजका भी उच्छेदन करनेवाले हैं उन्हें मैं भजता हूँ॥९॥

अखर्वसर्वमंगलाकलाकदम्बमंजरी-

रसप्रवाहमाधुरीविजृम्भणामधुव्रतम् ।
स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकं
गजान्तकान्धकान्तकं तमन्तकान्तकं भजे ।१०।

जो अभिमानरहित पार्वतीकी कलारूप कदम्बमंजरी के मकरन्दस्रोतकी बढ़ती हुई माधुरीकोपान करनेवाले मधुप हैं तथा कामदेव, त्रिपुर, भव, दक्ष-यज्ञ, हाथी, अन्धकासुर और यमराज का भी अन्त करने वाले हैं, उन्हें मैं भजता हूँ ॥ १० ॥

जयत्वदभ्रविभ्रमभ्रमद्भुजंगमश्वस-
द्विनिर्गमत्क्रमस्फुरत्करालभालहव्यवाट् ।
धिमिद्धिमिद्धिमिद्ध्वनन्मृदंगतुंगमंगल-
ध्वनिक्रमप्रवर्तितप्रचण्डताण्डवः शिवः ।११।

जिनके मस्तक पर बड़े वेग के साथ घूमते हुए भुजंग के फुफकारने से ललाट की भयंकर अग्नि क्रमशः धधकती हुई फैल रही है, धिम-धिम बजते हुए मृदंग के गम्भीर मंगल घोष के क्रमानुसार जिनका प्रचण्ड ताण्डव हो रहा है, उन भगवान् शंकरकी जय हो ।११।

दृषद्विचित्रतल्पयोर्भुजंगमौक्तिकस्रजो-
र्गरिष्ठरत्नलोष्ठयोः सुहृद्विपक्षपक्षयोः ।
तृणारविन्दुचक्षुषोः प्रजामहीमहेन्द्रयोः
समप्रवृत्तिकः कदासदाशिवं भजाम्यहम् ।१२।

पत्थर और सुन्दर बिछौनों में, सांप और मुक्ता की माला में, बहुमूल्य रत्न तथा मिट्टी के ढेले में, मित्र या शत्रुपक्षमें, तृण अथवा कमललोचना तरुणी में, प्रजा और पृथ्वी के महाराज में समानभाव रखता हुआ मैं कब सदाशिव को भजूँगा ॥ १२ ॥

कदानिलिम्पनिर्झरीनिकुंजकोटरे बसन्
विमुक्तदुर्मतिः सदा शिरःस्थमंजलिं वहन् ।
विलोललोललोचनो ललामभाललग्नकः
शिवेति मन्त्रमुच्चरन् कदा सुखी भवाम्यहम् ।१३।

सुन्दर ललाटवाले भगवान् चन्द्रशेखर में दत्तचित्त हो अपने कुविचारों को त्यागकर गंगाजी के तटवर्ती निकुंज के भीतर रहता हुआ सिरपर हाथ जोड़ डबडबाई हुई बिह्वल आंखों से 'शिव' मन्त्र का उच्चारण करता हुआ मैं कब सुखी होऊँगा ? ॥ १३ ॥

इमं हि नित्यमेवमुक्तमुत्तमोत्तमं स्तवं
पठन्स्मरन्ब्रुवन्नरो बिशुद्धिमेति सन्ततम् ।
हरे गुरौसुभक्तिमाशु यातिनान्यथा गतिं
विमोहनं हि देहनां सुशंकरस्य चिन्तनम् ।१४।

जो मनुष्य इस प्रकार से उक्त उत्तमोत्तम स्तोत्रका नित्य पाठ, स्मरण और वर्णन करता रहता है, वह सदा शुद्ध रहता है और शीघ्र ही सुरगुरु श्रीशंकरजीकी अच्छी भक्ति प्राप्त कर लेता है, वह विरुद्धगति को नहीं प्राप्त होता: क्योंकि श्रीशिवजी का अच्छी प्रकार चिन्तन प्राणिवर्गके मोह का नाश करने वाला है ॥ १४ ॥

पूजावसानसमये दशवक्त्रगीतं
यः शम्भुपूजनपरं पठति प्रदोषे ।
तस्य स्थिरां रथगजेन्द्रतुरंगयुक्तां
लक्ष्मी सदैव सुमुखी प्रददाति शम्भुः ।१५।

सायंकाल में पूजा समाप्त होने पर रावण के गाये हुए इस शम्भुपूजन सम्बन्धी स्तोत्रका जो पाठ करता है, शंकरजी उस मनुष्य को रथ, हाथी, घोड़ों से युक्त सदा स्थिर रहनेवाली अनुकूल सम्पत्ति देते हैं ॥ १५ ॥

इति श्री रावणकृतं शिवताण्डवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

श्रीरुद्राष्टकम्

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं ।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ।१।

हे मोक्षस्वरूप, विभु, व्यापक, ब्रह्म और वेदस्वरूप, ईशान दिशाके ईश्वर तथा सबके स्वामी श्री शिवजी ! मैं आपको नमस्कार

करता हूँ। निजस्वरूप में स्थित (अर्थात् मायादि रहित), (मायिक) गुणों से रहित, भेदरहित, इच्छारहित, चेतन आकाशरूप एवं आकाश को ही वस्त्र रूप में धारण करने वाले दिगम्बर (अथवा आकाश को भी आच्छादित करने वाले) आपको मैं भजता हूँ ॥ १ ॥

निराकारमोंकारमूलं तुरीयं
गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।
करालं महाकाल कालं कृपालं
गुणागार संसारपारं नतोऽहं।२।

निराकार, ओंकार के मूल, तुरीय (तीनों गुणों से अतीत), वाणी, ज्ञान और इन्द्रियों से परे, कैलासपति, विकराल, महाकाल के भी काल, कृपालु, गुणोंके धाम, संसारसे परे आप परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं
मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं।
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा
लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा।३।

जो हिमाचल के समान गौरवर्ण तथा गम्भीर हैं, जिनके शरीर में करोड़ों कामदेवों की ज्योति एवं शोभा है, जिनके सिरपर सुन्दर नदीगंगाजी विराजमान हैं, जिनके ललाटपर द्वितीयाका चन्द्रमा और गले में सर्प सुशोभित हैं ॥ ३ ॥

चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं

प्रसन्नाननं नीलकन्ठं दयालं ।
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं
प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि ।४।

जिनके कानों में कुण्डल हिल रहे हैं, सुन्दर भ्रूकुटी और विशाल नेत्र हैं: जो प्रसन्नमुख, नीलकण्ठ और दयालु हैं: सिंहचर्म का वस्त्र धारण किये और मुण्डमाला पहने हैं: उन सबके प्यारे और सबके नाथ (कल्याण करने वाले) श्री शंकरजी को मैं भजता हूँ ।।४।।

प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं
अखण्डं अजं भानुकोटिप्रकाशं ।
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं
भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं ।५।

प्रचण्ड (रुद्ररूप), श्रेष्ठ, तेजस्वी, परमेश्वर, अखण्ड, अजन्मा, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशवाले, तीनों प्रकार के शूलों (दुःखों) को निर्मूल करने वाले, हाथमें त्रिशूल धारण किये, भाव (प्रेम) के द्वारा प्राप्त होने वाले भवानीके पति श्रीशंकरजीको मैं भजता हूँ ।। ५।।

कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी
सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी ।
चिदानन्द संदोह मोहापहारी
प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ।६।

कलाओं से परे, कल्याण स्वरूप, कल्पका अन्त (प्रलय) करने वाले, सज्जनों को सदा आनन्द देने वाले, त्रिपुर के शत्रु, सच्चिदानन्दघन, मोहको हरने वाले, मनको मथ डालने वाले कामदेवके शत्रु हे प्रभो ! प्रसन्न हूजिये, प्रसन्न हूजिये ॥ ६ ॥

न यावद् उमानाथ पादारविन्दम्
भजंतीह लोके परे वा नराणां
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं
प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं ।७।

जबतक पार्वती के पति आपके चरण कमलों को मनुष्य नहीं भजते, तबतक उन्हें न तो इह लोक और न परलोक में सुख शान्ति मिलती है और न उनके तापों का नाश होता है। अतः हे समस्त जीवोंके अन्दर (हृदयमें) निवास करनेवाले प्रभो! प्रसन्न हूजिए।।७।।

न जानामि योगं जपं नैव पूजां
नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं ।
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं
प्रभो पाहि आसन्नमामीश शंभो ।८।

मैं न तो योग जानता हूँ, न जप और न पूजा ही । हे शम्भो ! मैं तो सदा-सर्वदा आपको ही नमस्कार करता हूँ । हे प्रभो ! बुढ़ापा तथा जन्म (-मृत्यु) के दुःखसमूहों से जलते हुए मुझ दुखी की दुःख से रक्षा कीजिए । हे ईश्वर ! हे शम्भो ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ८ ॥

श्लोक **रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये ।**
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शंभुः प्रसीदति ।९।

भगवान् रुद्र की स्तुति का यह अष्टक उन शंकरजीकी तुष्टि (प्रसन्नता) के लिए ब्राह्मणद्वारा कहा गया । जो मनुष्य इसे भक्ति-पूर्वक पढ़ते हैं, उनपर भगवान् शम्भु प्रसन्न होते हैं ।। ९ ।।

इति श्रीगोस्वामितुलसीदासकृतं श्रीरुद्राष्टकं सम्पूर्णम् ।

—

शिवपंचाक्षरस्तोत्र

श्रीगणेशाय नमः ।। नागेन्द्र हाराय त्रिलोचनाय भस्मांगरागाय महेश्वराय । नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै नकाराय नमः शिवाय ।१। मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय । मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय तस्मै माकराय नमः शिवाय ।। २ ।। शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्दसूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय । श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय तस्मै शिकाराय नमः शिवाय ।। ३ ।। वसिष्ठकुम्भोद्भव-गौतमार्यमुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय । चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय तस्मै वकाराय नमः शिवाय ।। ४ ।। यक्षस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय । दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्मै यकाराय नमः शिवाय ।। ५ ।। पंचाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ । शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ।। ६ ।।

।। इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं शिवपंचाक्षरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

—

पशुपति-अष्टक

श्रीगणेशाय नमः ।। पशुपतीन्दुपतिं धरणीपतिं भुजगलोकपतिं च सतीपतिम् । प्रणतभक्तजनार्तिहरं परं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् । १ । न जनको जननी न च सोदरी न तनयो न च भूरिबलं कुलम् । अवति कोऽपि न कालवशं गतं भजत० ।। २ ।। मुरजडिण्डिमवाद्यविलक्षणं मधुरपंचमनादविशारदम् ।। प्रमथभूतगणैरपि सेवितं भज० ।। ३ ।। शरणदं सुखदं शरणान्वितं शिव शिवेति शिवेति नतं नृणाम् । अभयदं करुणावरुणालयं भज० ।। ४ ।। नरशिरोरचितं मणिकुण्डलं भुजगहारमुदं वृषभध्वजम् । चितिरजोधवली कृतविग्रहं भज० ।। ५ ।। मखविनाशकरं शशिशेखरं सततमध्वरभाजिफलप्रदम् । प्रलयदग्धसुरासुरमानवं भज० ।। ६ ।। मदमपास्य चिरं हृदि संस्थितं मरणजन्मजराभयपीडितम् । जगदुदीक्ष्य समीपभयाकुलं भज० ।। ७ ।। हरिविरंचिसुराधिपपूजितं यमजनेशधनेशनमस्कृतम् । त्रिनयनं भुवनत्रितयाधिपं भज० ।। ८ ।। पशुपतेरिदमष्टकमद्भुतं विरचितं पृथ्वीपतिसूरिणा । पठति संशृणुते मनुजः सदा शिवपुरीं वसते लभते मुदम् ।। ९ ।।

।। इति श्रीपशुपति-अष्टकं सम्पूर्णम् ।।

-: समाप्त :-

मुद्रक : दीक्षित प्रेस, आगरा-४

धार्मिक, पूजा-पाठ, कर्मकाण्ड
तथा ज्योतिष सम्बन्धी पुस्तकें

●

सन्तान गोपाल स्तोत्र	होड़ा चक्रम्
सर्वदेव पूजा-विधि	मान सागरी
शिव महिम्न स्तोत्रम्	दुर्गा सप्तशती
महालक्ष्मी पूजा विधि	शिव स्वरोदय
सन्तोषीमाता व्रत कथा	हनुमान ज्योतिष
रामरक्षा स्तोत्रम्	व्यापार भविष्य
सरल ज्योतिष शिक्षा	मैस्मेरिज्म शिक्षा
सत्य नारायण व्रत कथा	सामुद्रिक शास्त्र

इनके अतिरिक्त हर प्रकार की टैक्निकल, इण्डस्ट्रियल, संगीत, नाटक, डिक्शनरी, हिन्दी-अंग्रेजी की बालोपयोगी पुस्तकें, रामायण, सुख सागर, शिवपुराण, महाभारत आदि ग्रन्थ एवं चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तकें भी मिलती हैं। विस्तृत जानकारी के लिए सूचीपत्र मँगायें।

कमल पुस्तकालय

१६७७ नई सड़क, दिल्ली-६